वर्तमान संदर्भ में संस्कृत भाषा की उपादेयता

सुनीता कुमारी नागर*

भारतीय सभ्यता और संस्कृति के गौरवपूर्ण इतिहास का साक्ष्य हमें संस्कृत भाषा से प्राप्त होता है। चाहे वो यूरोपियन रहे हों या मुस्लिम शासक सबने इस भाषा को बहुत महत्त्व दिया है। पिछली तीन सदियों से संस्कृत साहित्य की ज्ञान संपदा का दोहन विदेशी करते आ रहे हैं। परंतु हमारे देश में इस भाषा के प्रचार-प्रसार को बहुत कम महत्त्व दिया जा रहा है जो बहुत ही दुःखद है। आज के युवा भी इसमें अधिक रुचि नहीं दिखा रहे हैं क्योंकि यह रोज़गारपरक नहीं है। आवश्यकता है इस भाषा को रोज़गारपरक बनाने की जिससे अधिक से अधिक युवा इसमें रुचि लें और इसके लिए कार्य करें। प्रस्तुत लेख में कुछ ऐसी ही चर्चा की गई है।

विश्व की अनेक प्राचीन सभ्यताएँ कालकवलित हो गईं, किंतु भारतीय संस्कृति आज भी विश्व के प्रांगण में अपना सम्मानपूर्ण तथा गौरवमय स्थान बनाए हुए है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि भारतीय संस्कृति के उद्भव एवं विकास को संस्कृत भाषा का स्वर प्राप्त हुआ है। प्राचीन काल से ही विभिन्न संस्कृतियों, मान्यताओं, धार्मिक विश्वासों, बौद्धिक पूर्वाग्रहों की अभिव्यक्ति संस्कृत के माध्यम से हुई है, इसलिए बार-बार उद्घोष किया जाता रहा है- *'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा'।*[1] महात्मा गाँधी ने संस्कृत भाषा की महत्ता को प्रदर्शित करते हुए कहा है कि संस्कृत भाषा के बिना कोई भी भारतीय एक सच्चा ज्ञानी नहीं हो सकता। विदेशी विद्वान मैक्समूलर ने भी संस्कृत को विश्व की महानतम भाषा माना है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था बहुत सारी शास्त्रीय भाषाओं के प्रति हमेशा से ही उदार रही है जिसमें तमिल, लैटिन, अरबी और संस्कृत शामिल हैं। लेकिन संस्कृत को ज़्यादा गंभीरता से लेने की ज़रूरत है, जैसा कि जवाहरलाल नेहरू (1949) ने कहा था कि– *संस्कृत भाषा और साहित्य*

* *शोधछात्रा*, सांख्ययोग विभाग, दर्शन संकाय, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नयी दिल्ली-110016

1. *महाभारत*, शांति पर्व- श्लोक सं. 51

भारत का सबसे बड़ा खज़ाना है और वे यह भी विश्वास करते थे कि भारत की बौद्धिकता तब तक बनी रहेगी जब तक ये हमारे भारतीय लोगों के जीवन को प्रभावित करते रहेंगे।[2]

संस्कृत भाषा का साहित्यिक तथा प्राच्यविद्यापरक इतिहास मात्र एकवर्गीय चेतना की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि इसमें मानव-सभ्यता के स्वस्थ मूल्यों की बहु-आयामी दिशाएँ मुखरित हुई हैं, जो भारत को 'जगद्गुरु' बनाने का गौरव प्रदान करती हैं। राष्ट्रीय एकता को एक सूत्र में पिरोने तथा भारत की सामाजिक संस्कृति को इंद्रधनुषी रंग से अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली एक दायित्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह संस्कृत भाषा और उसका साहित्य प्राचीन काल से करता आया है। संस्कृत भारतवर्ष की राष्ट्रीय अखण्डता और 'अनेकता में एकता' का संदेश देती आई है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक तथा गुजरात से लेकर नागालैण्ड तक भारत में तीन सौ से अधिक भाषाएँ या बोलियाँ बोली जाती हैं। संस्कृत इन सभी भाषाओं और बोलियों की माँ है और उन्हें एकता के सूत्र में बाँधती है। संस्कृत की राष्ट्रीय चेतना के परिणामस्वरूप ही भारतवर्ष एक समृद्ध साँस्कृतिक राष्ट्र के रूप में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना पाया है।

संस्कृत भाषा ने देश की सभी विचार परंपराओं और साँस्कृतिक विरासतों का प्रतिनिधित्व किया है। चाहे वेदवादी रहे हों या वेदविरोधी, आस्तिक हों या नास्तिक, जैन हों या बौद्ध, शैव हों या वैष्णव, अध्यात्मवादी हों या लोकायत्तिक, मुस्लिम हों या यूरोपियन सभी ने संस्कृत-साहित्य के महासमुद्र में अपनी वाग्धारा का अर्घ्य समर्पित किया है तथा ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में यह गवाही भी दी है कि संस्कृत भाषा एक संप्रदाय विशेष अथवा प्रांत विशेष की भाषा नहीं है। भारत के कोने-कोने में संस्कृत ने राष्ट्रीय स्तर पर पारस्परिक भ्रातृत्व संवाद के लिए मार्ग प्रशस्त किया है तथा संप्रदायवाद एवं प्रांतवाद से ऊपर उठकर राष्ट्रीय प्रज्ञा के संग्रहण और संवर्धन के स्वर्णिम अवसर जुटाए हैं। ये ही कारण हैं कि धर्मवादी और अर्थवादी तथा चेतनावादी सभी विचार परंपराओं के ऐतिहासिक तट संस्कृत साहित्य में निर्मित हुए हैं। किंतु आज हम किन्हीं राजनीतिक और आर्थिक संकीर्णताओं से अभिशप्त होकर पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की ओर लालायित हैं, संस्कृत साहित्य की ओर हमने उपेक्षा की दृष्टि अपना ली है।

ज्ञान-विज्ञान के संवर्धन का चाहे राष्ट्रीय संदर्भ हो या फिर अंतर्राष्ट्रीय, संस्कृत विद्या के अक्षय भण्डार का अपलाप नहीं किया जा सकता है। भारतीय तत्व-चिंतकों ने ही सर्वप्रथम सत्यानुसंधान की वैज्ञानिक प्रक्रिया का आविष्कार करते हुए यह उद्घाटित किया है कि *'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्'*[3] अर्थात् भौतिकवादी चमक-दमक से सत्य को

2. नेहरू, जे., 'फॉर्म दी फंक्शन ऑफ लैंग्वेज', नेशनल हेराल्ड, 13 फरवरी, 1949, कोटेड इन-गोपाल, एस. एण्ड आयंगर, ए. 2003(एडीटेड), *दि एसेंशियल राइटिंग्स ऑफ जे. नेहरू*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड

3. *ईशावास्योपनिषद्*, मंत्र सं.-18

ढाँप दिया जाता है। इसलिए सत्यानुसंधान के शोधार्थी के लिए यह आवश्यक है कि वह *'वादे वादे जाएते तत्वबोध'*[4] की मार्ग सरणी का पथिक बनकर आधुनिक मानव के लिए तुलनात्मक ज्ञान-विज्ञान का द्वार खोले, परंतु इस मार्ग में उसे सर्वप्रथम प्राचीन भारतीय वाङ्मय के रम्य तपोवनों से गुज़रना होगा और उसके बाद ही वह आधुनिक विश्वविद्यालयीय ज्ञान-विज्ञान का वास्तविक मूल्यांकन कर सकता है। आधुनिक मानव के लिए संस्कृत विद्या की अनिवार्यता इसलिए भी रेखांकित हो जाती है, ताकि वह आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के स्रोतों को पकड़ सके और यह जान सके कि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान कितना प्रगतिशील है। विदेशों में इस अमूल्य ज्ञान-संपदा का व्यापक स्तर पर दोहन कार्य पिछली तीन सदियों से निरंतर प्रगति पर है, किंतु भारतवर्ष में इस दिशा में गंभीरता से सोचना प्रारंभ नहीं हुआ है। जिसके फलस्वरूप संबंधित विचारकों द्वारा भारतीय विद्या और उसके प्राचीन ज्ञान-विज्ञान को अवमानित किया जाता है। इस मानसिकता का एक मुख्य कारण है राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति उदासीनता तथा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को उत्कृष्ट मानने का पूर्वाग्रह। ब्रिटेन, रूस, अमेरिका, फ्राँस, जर्मनी आदि देशों में संस्कृत-विद्या के अध्ययन को जो प्रोत्साहन दिया जा रहा है उसका मुख्य कारण यह है कि वहाँ के बुद्धिजीवियों ने संस्कृत की प्रासंगिकता को आधुनिक संदर्भ में भी चरितार्थ किया है। सोवियत विद्वान गोरबोवस्की (रशियन क्युनिशयन एजेंसी से संबंधित) महाभारत में ब्रहमास्त्र प्रयोग के अवतरणों से प्राचीन भारत में 'एटम बम' के अस्तित्व होने की संभावनाओं का पता लगा रहे हैं। संस्कृत विद्याओं के वैज्ञानिक महत्त्व के कारण इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि में वैदिक गणित को शिक्षा के पाठ्यक्रम का अंग ही बना दिया गया है।[5] लंदन में 10+2 प्रणाली के अंतर्गत गणित के आधुनिक फॉर्मूलों को समझने के लिए प्राचीन भारतीय गणितशास्त्र को एक उपयोगी प्रणाली के रूप में मान्यता मिल चुकी है।[6] संस्कृत अध्ययन से जुड़ी इन अंतर्राष्ट्रीय उपलब्धियों से यह भली-भांति सिद्ध हो जाता है कि आज भारत में संस्कृत को महत्त्व देना कितना आवश्यक है।

18वीं शताब्दी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के ध्रुवीकरण की एक महत्वपूर्ण शताब्दी रही है। इसी शताब्दी में 'सर विलियम जोंस V' ने संस्कृत की खोज के साथ प्राच्य विद्या अनुसंधान की आधारशिला रखी। 'संस्कृत की खोज' से पाश्चात्य विद्वान एक 'भारोपीय भाषा परिवार' की नवीन अवधारणा का भी आविष्कार करने में सफल हुए, जिसका अर्थ है विश्व की सभी भाषाओं में संस्कृत भाषा का अवेस्ता, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन। भाषा वैज्ञानिक-निष्कर्षों के परिणामस्वरूप एक

4. *न्याय सूत्र*, 2/18
5. Englend: www.vedikmamthes.org
6. Englend: www.vedikmamthes.org

ओर तुलनात्मक 'भाषा विज्ञान' और 'लिपि विज्ञान' जैसे नवीन अध्ययन-विषय प्रकाश में आए तो दूसरी ओर तुलनात्मक धर्म विज्ञान के माध्यम से 'विश्व संस्कृति' के इतिहास को जानने के लिए संस्कृत भाषा की महत्ता उभर कर आई यूरोपियन सभ्यताएँ वैदिक आर्यों के साथ अपने साँस्कृतिक संबंधों को जोड़ने की होड़ में लग गईं। नि:संदेह संस्कृत के कारण 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की आधुनिक व्याख्या संभव है तथा भारत को अंतर्राष्ट्रीय सम्मान भी प्राप्त होता है।

सत्य तो यह है कि वैदिक काल से संस्कृत भाषा भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा होने के कारण भारत-भारती के रूप में व्यवहृत होती थी। वैदिक ऋषियों ने संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ लोक भाषाओं के अभ्युदय की कामना भी की है और भारतवर्ष के संविधान में अपनाये गए 'सर्वभाषा उन्नति' के सिद्धांत को स्वर प्रदान करते हुए कहा-*'आ भारती भारतीभि: सजोषा"*।

मध्यकाल में जब भारत अपनी राजनीतिक कमज़ोरियों के कारण राज्यों में विभक्त हो गया था, उस समय भी संस्कृत को कार्य व्यवहार और राजभाषा का दर्जा प्राप्त था। वास्तविकता तो यही है कि भले ही हम अपने क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थों के कारण प्रांतवाद और क्षेत्रवाद के गणित को अपनाते आए हैं, परंतु जब भी जन-जीवन में राष्ट्रीय चेतना और अखण्ड भारत की भावना आई है, उसका उदाहरण संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य ही रहा है।

सामान्यतया यह भ्रांत धारणा प्रचलित है कि मुसलमान शासकों के राज्यकाल में संस्कृत भाषा और साहित्य हतोत्साहित हुआ। प्रसिद्ध इतिहासकार श्री रमेशचंद्र मजूमदार ने इस मिथ्या धारणा का खण्डन करते हुए कहा कि 'मुसलमान शासक संस्कृत प्रेमी थे और उनके शासन काल में संस्कृत को प्रश्रय तथा प्रोत्साहन मिला।' क्षेमेन्द्र कृत 'लोकप्रकाश' नामक ग्रंथ में वर्णित है कि मुस्लिम शासन के प्रारंभ होने के बाद भी दीर्घ काल तक कश्मीर में संस्कृत राजकीय व्यवहार, कचहरियों और शासकीय आदेशों की भाषा रही थी। इस ग्रंथ में दैनिक शासन की लिखा-पढ़ी, प्रतिवेदन, प्रलेख आदि के जो नमूने दिये गए हैं, वे संस्कृतनिष्ठ ही हैं। 'लेखपद्धति' नामक ग्रंथ से यह भी ज्ञात होता है कि गुजरात के सुलतान बहुत समय तक राजभाषा के रूप में संस्कृत का ही व्यवहार करते आए थे। कश्मीर के इतिहास में जैनुल आबदीन (1420-70 ई.) संस्कृत साहित्य और भारतीय विद्याओं का अनन्य प्रेमी था। भारतवर्ष में अनेक ऐसी मुस्लिम कब्रें भी मिली हैं, जिन पर शिलालेख संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण हुए हैं। अब्दुल रहमान नामक प्रसिद्ध साहित्यकार संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश का मर्मज्ञ विद्वान था। अकबर के राज्यकाल में संस्कृत भाषा और उसके विद्वानों को विशेष समादर मिला था। अबुल फ़ज़ल के भाई संस्कृत के बहुत अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने हिंदी तथा संस्कृत की सम्मिश्रित भाषा में 'रहीम काव्य'

7. *ऋग्वेद*- 7.2.8

की रचना की तथा 'खेट कौतुकम्' नामक एक ज्योतिष ग्रंथ का भी निर्माण किया। शाहजहाँ के समय में भी संस्कृत को राजकीय सम्मान प्राप्त था। राजकुमार दाराशिकोह संस्कृत का पारंगत विद्वान् था, जिसकी प्रेरणा से उपनिषदों, भगवद्गीता, योगवाशिष्ठ का फ़ारसी भाषा में अनुवाद भी करवाया गया। मुस्लिम राजपरिवार की महिलाएँ भी संस्कृत-काव्य के प्रति मुग्ध थीं। शाहजहाँ की बेगम रूपराशि बंशीधर मिश्र की संस्कृत-रचनाओं से अत्यंत प्रभावित थीं। इन सभी तथ्यों से स्पष्ट है कि संस्कृत भाषा की माधुरी और उसके तत्वगाहन की प्रवृत्ति ने मुस्लिम शासन को भी मंत्र-मुग्ध कर लिया था तथा मुस्लिम शासकों, साहित्यकारों तथा बुद्धिजीवियों ने इसके संवर्धन और विकास के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इस प्रकार संस्कृत भूत, भविष्य और वर्तमान भारत के लोकमानस की भव्य अभिव्यक्ति है। इसमें उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम का अखण्ड भारत प्रतिबिंबित है; विभिन्न धार्मिक और वैचारिक मान्यताओं के स्वर गुंजायमान हैं; राष्ट्रीय अस्मिता की प्रतीक संस्कृत भाषा के साहित्यिक कलेवर में मानवीय सभ्यता के उत्कृष्ट ज्ञान-विज्ञान की लहरें हिलोरें मार रही हैं।

आज भारतवर्ष में जो पाश्चात्य सभ्यता और विचारों का पोषण एवं पल्लवन किया जा रहा है, उसका मूल भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों और तत्वचिंतकों के ज्ञान-विज्ञान में निहित है। बात चाहे लोकतंत्र की हो या धर्मनिरपेक्षता की, स्वतंत्रता के अर्थ को समझना हो या फिर शांति अथवा विश्व-बंधुत्व के अभिप्राय को, संस्कृत साहित्य के निर्मल कलेवर में इसका वास्तविक अर्थ समझाया गया है। गणित शास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, भूगोल, ज्योतिष, दर्शन, साहित्य, संगीत आदि ज्ञान-विज्ञान की महनीय परंपराएँ भारतवर्ष की अमूल्य निधियाँ हैं और ये सभी निधियाँ संस्कृत के पिटारे में बंद हैं। अंग्रेज़ी शिक्षा व्यवस्था की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के मध्य में प्राच्य पाश्चात्य विवाद से हुई थी। मैकाले मिनट्स (1935) ने शिक्षा के माध्यम को अंग्रेज़ी में करने को कहा था जिसे लेकर विवाद तो चला लेकिन अंततः अंग्रेज़ी की ही जीत हुई और भारत में अंग्रेज़ी को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपना लिया गया उस समय तक पाठशालाओं में संस्कृत पढ़ाई जाती थी परंतु अंग्रेज़ी के आने के बाद धीरे-धीरे संस्कृत का महत्त्व कम होता गया और भारत में अंग्रेज़ी का वर्चस्व छा गया। आज़ादी के बाद भी संस्कृत के प्रचार-प्रसार पर यथोचित ध्यान नहीं दिया गया। आज महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन होता अवश्य है लेकिन इसे रोज़गारपरक बनाने का प्रयास नहीं किया जा रहा है। अतः वैश्वीकरण के इस युग में युवा संस्कृत में रुचि नहीं ले रहे हैं। यही नहीं विद्यालयों में भी विद्यार्थी संस्कृत एवं हिंदी के स्थान पर आधुनिक यूरोपीय भाषा यथा फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश इत्यादि भाषाएँ पढ़ना अधिक पसंद करते हैं, हालत यह हो गई है कि कुछ विद्यालय संस्कृत भाषा के स्थान पर यूरोपियन भाषाएँ ही पाठ्यक्रम में रख रहे हैं।

यह संस्कृत भाषा के हित में नहीं है। इसलिए आवश्यकता है कि राष्ट्रीय स्तर पर संस्कृत भाषा को प्रोत्साहित किया जाएँ। विद्यालयों में संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ यथा नाटक, संस्कृत में वाद-विवाद इत्यादि। विद्यालय से विश्वविद्यालय स्तर तक संस्कृत का प्रचार बहुत आवश्यक है।

संस्कृत को पढ़ने के साथ जो समस्या जुड़ी थी वह यह है कि इसे कर्मकांडों की या नैतिक मूल्यों को फैलाने वाली भाषा के रूप में लिया जाता रहा, इससे इसके सौंदर्यबोधात्मक पक्ष और विविध साहित्य भी नज़रअंदाज़ होते रहे। अद्यतन शोधों ने ऐसी कई दबी हुई आवाज़ों को सामने प्रस्तुत किया। इसने संस्कृत भाषा की कई परंपराओं का भेद खोला और उन्हें संदर्भ प्रदान किया। संस्कृत पठन-पाठन के शिक्षाशास्त्र में इसका बड़ा गंभीर प्रभाव पड़ेगा। आधुनिक भारतीय भाषा (एम.आई.एल.) के रूप में अब यह संभव हो गया है कि हम अपने पारंपरिक पाठ्यपुस्तकों के लेखकों को मना सकें कि वह अब केवल शास्त्रीय संस्कृत में ही नहीं बल्कि आम बातचीत के रूप में भी संस्कृत में लिखें, जो विद्यार्थी जीवन में प्रासंगिक हो। (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005, भारतीय भाषाओं का शिक्षण, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, एन.सी.ई.आर.टी., वर्ष-2005 पृ. सं. 18-19)

हमें नालंदा और तक्षशिला जैसे भारतीय विश्वविद्यालयों की भाँति विश्वस्तर पर शिक्षा -जगत् को ऊँचा उठाना है। मानव की मौलिक समस्याओं के विषय में भारतीय तत्वज्ञानियों ने जो अपने अनुभवपरक वैज्ञानिक सत्यों का रहस्योद्घाटन किया है, विश्व के बुद्धिजीवियों तक उन्हें पहुँचाना है। यह तभी संभव हो सकता है, जब राष्ट्रीय स्तर पर संस्कृत को प्रोत्साहन दिया जाए। राष्ट्रीय उन्नति के लिए साँस्कृतिक उन्नति आवश्यक है और संस्कृति का प्रसार संस्कृत से ही संभव है।